

मयेति कथिता ज्ञान-वानस्यैषा कथा शुभा। अस्तु मे भवतां भव्या केवलज्ञानहेतवे ॥४२॥

गच्छे श्रीमति मूलसंघविमले सारस्वते सच्छुभे

श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरू रत्नत्रयालंकृतः।

तच्छिष्येण कथा जिनेन्द्रकथिता श्रीज्ञानदानोद्भवा

भव्यानां भवशान्तये विरचिता भूयात्सदा शर्मदा ॥४३॥

इति कथाकोशे सुपात्रदत्तज्ञानदानफलप्राप्तकौण्डेशनृपाख्यानं समाप्तम्।

११२. अभयदानफलप्राप्ताख्यानम्

श्रीमत्पादद्वयं नत्वा जिनेन्द्रस्य शुभश्रिये। कथामभयदानस्य भक्त्यार्हत्सूत्रतो ब्रुवे ॥१॥

सरस्वती श्रिये मेस्तु भक्त्या भव्यशतार्चिता। महाश्रुताब्धिपाराय सतां या नौ मतल्लिका ॥२॥

स्मरामि शान्तये नित्यं मुनीनां ब्रह्मशालिनाम्। येषां सद्भक्तितो नूनं सन्मार्गः सुखतो नृणाम् ॥३॥

इत्याप्तगुणसंस्तोत्रमंगलेन मयाधुना। कथा वसतिदानस्य दृष्टान्तेन निगद्यते ॥४॥

अत्रैव भरतक्षेत्रे पवित्रे धर्मकर्मभिः। देशो मालवसंज्ञोभूमहाशोभाशतान्वितः ॥५॥

धनैर्धान्यैर्जनैर्नित्यं नानावस्तुसमुच्चयैः। भाति यः सम्पदासारैर्निवासो वा जगच्छ्रियः ॥६॥

सुख का कारण है ॥२९-४१॥

मैंने जो यह दान की कथा लिखी है वह आप लोगों को तथा मुझे केवलज्ञान के प्राप्त करने में सहायक हो ॥४२॥

मूलसंघ सरस्वती गच्छ में भट्टारक मल्लिभूषण हुए। वे रत्नत्रय से युक्त थे। उनके प्रिय शिष्य ब्रह्मनेमिदत्त ने यह ज्ञानदान की कथा लिखी है। यह निरन्तर आप लोगों के संसार की शान्ति करें अर्थात् जन्म, जरा, मरण मिटाकर अनन्त सुखमय मोक्ष प्राप्त कराये ॥४३॥

११२. अभयदान की कथा

मोक्ष की प्राप्ति के लिए भगवान् के चरणों को नमस्कार कर अभय-दान द्वारा फल प्राप्त करने वाली की कथा जैनग्रन्थों के अनुसार यहाँ संक्षेप में लिखी जाती है ॥१॥

भव्यजनों द्वारा भक्ति से पूजी जाने वाली सरस्वती श्रुतज्ञानरूपी महासमुद्र के पार पहुँचाने के लिए नाव की तरह मेरी सहायता करें। परब्रह्म स्वरूप आत्मा का निरन्तर ध्यान करने वाले उन योगियों को शान्ति के लिए मैं सदा याद करता हूँ, जिनकी केवल भक्ति से भव्यजन सन्मार्ग लाभ करते हैं, सुखी होते हैं। इस प्रकार मंगलमय जिनभगवान्, जिनवाणी और जैन योगियों का स्मरण कर मैं वसतिदान-अभयदान की कथा लिखता हूँ ॥२-४॥

धर्म-प्रचार, धर्मोपदेश, धर्म-क्रिया आदि द्वारा पवित्रता लाभ किए हुए भारतवर्ष में मालवा में बहुत काल से प्रसिद्ध और सुन्दर देश है। अपनी सर्वश्रेष्ठ सम्पदा और ऐश्वर्य से वह ऐसा जान

वनैरारामसंयुक्तैः सरिद्विरिसमन्वितैः। पद्माकरैश्च संकीर्णो देवानामप्रियः प्रियः ॥७॥
 नरनार्योवसन्त्युच्चै रूपलावण्यमण्डिताः। महाभोगशतैर्युक्ता यत्र पुण्यप्रसादतः ॥८॥
 यत्र सद्धानि भान्त्युच्चैर्जिनानां जितकर्मणाम्। ग्रामे ग्रामे महासार-पर्वतेषु वने वने ॥९॥
 प्रोत्तुङ्गशिखरैर्नित्यं कनत्काञ्चनसद्घटैः। ध्वजोत्करकरैर्यानि दर्शयन्तीव सत्पथम् ॥१०॥
 येषां दर्शनमात्रेण पवित्रजिनसद्धानाम्। क्षणात्पापं प्रयात्येव तत्र किं वर्ण्यते परम् ॥११॥
 यत्र श्रीमुनयो नित्यं रत्नत्रयविराजिताः। भान्ति सत्तपसा स्वस्था मार्गा वा शिवसद्धानः ॥१२॥
 लसत्युच्चैर्जिनेन्द्राणां यत्र धर्मः सुशर्मदः। सम्यक्त्वरत्नसंपूतो दानपूजाव्रतान्वितः ॥१३॥
 दोषैर्मुक्तो जिनाधीशो देवदेवेन्द्रपूजितः। अष्टादशभिरित्यास्था केवलज्ञानशर्मभाक् ॥१४॥
 दशलाक्षणिको धर्मो गुरुनिर्ग्रन्थलक्षणः। तत्त्वे जिनोदिते श्रद्धा सम्यक्त्वं चेति लक्षणम् ॥१५॥
 पूजां श्रीमज्जिनेन्द्राणां स्वर्मोक्षसुखदायिनीम्। दानं पात्रे महाभक्त्या नित्यं शर्मशतप्रदम् ॥१६॥
 सच्छीलमुपवासं च व्रतानि बहुभेदतः। यत्र भव्या विधायेति धर्मं यान्त्येव सद्गतिम् ॥१७॥

पड़ता है मानों सारे संसार की लक्ष्मी यहीं आकर इकट्ठी हो गई है। वह सुख देने वाले बगीचों, प्रकृति-सुन्दर पर्वतों और सरोवरों की शोभा से स्वर्ग के देवों को भी अत्यन्त प्यारा है। वे यहाँ आकर मनचाहा सुख लाभ करते हैं। यहाँ के स्त्री-पुरुष सुन्दरता में अपनी तुलना में किसी को न देखते थे। देश के सब लोग खूब सुखी थे, भाग्यशाली थे और पुण्यवान् थे। मालवे के सब शहरों में, पर्वतों में और सब वनों में बड़े-बड़े ऊँचे विशाल और भव्य जिनमन्दिर बने हुए थे। उनके ऊँचे शिखरों में लगे हुए सोने के चमकते कलश बड़े सुन्दर जान पड़ते थे। रात में तो उनकी शोभा बड़ी ही विलक्षणता धारण करती थी। वे ऐसे जान पड़ते थे मानों स्वर्गों के महलों में दीये जगमगा रहे हों। हवा के झकोरों से इधर-उधर फड़क रही उन मन्दिरों पर की ध्वजाएँ ऐसी देख पड़ती थीं मानों वे पथिकों को हाथों के इशारे से स्वर्ग जाने का रास्ता बतला रही हैं। उन पवित्र जिन मन्दिरों के दर्शन मात्र से पापों का नाश होता था तब उनके सम्बन्ध में और अधिक क्या लिखें। जिनमें बैठे हुए रत्नत्रय धारी साधु-तपस्वियों को उपदेश करते हुए देखकर यह कल्पना होती थी कि मानों वे मोक्ष के रास्ते हों ॥५-१२॥

मालवे में जिन भगवान् के पवित्र और सुख देने वाले धर्म का अच्छा प्रचार है। सम्यक्त्व की जगह-जगह चर्चा है। अनेक सम्यक्त्व रत्न के धारण करने वाले भव्यजनों से वह युक्त हैं। दान-व्रत, पूजा-प्रभावना आदि वहाँ खूब हुआ करते हैं। वहाँ के भव्यजनों का निर्भ्रान्त विश्वास है कि अठारह दोष रहित जिन भगवान् ही सच्चे देव हैं। वे ही केवलज्ञानी-सर्वज्ञ हैं। उनकी स्वर्ग के देव तक सेवा-पूजा करते हैं। सच्चा धर्म दशलक्षणमय है और उनके प्रकटकर्ता जिनदेव हैं। गुरु परिग्रह रहित और वीतरागी है। तत्त्व वही सच्चा हैं जिसे जिन भगवान् ने उपदेश किया है। वहाँ के भव्यजन अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मों में सदा प्रयत्नवान् रहते हैं। वे भगवान् की स्वर्ग-मोक्ष का सुख देने वाली पूजा सदा करते हैं, पात्रों को भक्ति से पवित्र दान देते हैं, व्रत, उपवास, शील, संयम को पालते हैं और

तत्रोद्भवे घटग्रामे सम्पदासारसंभृते। संजातो देविलो नाम्ना कुंभकारो धनान्वितः ॥१८॥
 तत्रैव च घटग्रामे नाम्ना धर्मिलनापितः। ताभ्यां पथिकलोकानां वासदानायकारितम् ॥१९॥
 एकं देवकुलं तत्र देविलेनैकदा मुदा। धर्मार्थं मुनये दत्तो निवासः प्रथमे परः ॥२०॥
 धर्मिलेन ततस्तत्र परिव्राजककः कुधीः। समानीय धृतस्ताभ्यां मुनिस्तस्माद्विष्कृतः ॥२१॥
 सत्यं दुष्टा दुराचारा ये नराः पापवासिताः। तेषां नैव प्रियः साधुरुलोकानामिवांशुमान् ॥२२॥
 ततश्च मुनिनाथोऽसौ तस्मान्निर्गत्य लीलया। वृक्षमूले स्थितो रात्रौ स्वशरीरेऽपि निस्पृहः ॥२३॥
 इन्द्रचन्द्रार्कनागेन्द्रखेचरेन्द्रैः समर्चितः। शीतोष्णदंशमशकैः सहमानः परीषहान् ॥२४॥
 प्रभाते तं मुनिं दृष्ट्वा ज्ञात्वा तत्कारणं पुनः। देविलः कुंभकारश्च कुपितो धर्मिलाय सः ॥२५॥
 युद्धं कृत्वा तदा रौद्रं हत्वा तौ च परस्परम्। क्रमेण शूकरव्याघ्रौ संजातौ विन्ध्यपर्वते ॥२६॥
 यत्रैवास्ते गुहामध्ये स देविलचरः सुखम्। शूकरश्चैकदा तत्र समागत्य स्थितौ मुनी ॥२७॥
 द्वौ धीरौ दैवयोगेन पवित्रीकृतभूतलौ। समाधिगुप्तित्रिगुप्ती नाम्ना त्रैलोक्यपूजितौ ॥२८॥
 वीक्ष्य तौ यतिनौ जातिस्मरो भूत्वा स शूकरः। धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं व्रतं किमपि चाग्रहीत् ॥२९॥

आयु के अन्त में सुख-शांति से मृत्यु लाभ कर सद्गति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार मालवा उस समय धर्म का प्रधान केन्द्र बन रहा था, जिस समय की कि यह कथा है ॥१३-१७॥

मालवे में तब एक घटगाँव नाम का सम्पत्ति शाली शहर था। इस शहर में देविल नाम का एक धनी कुम्हार और एक धर्मिल नाम का नाई रहता था। इन दोनों ने मिलकर बाहर के आने वाले यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला बनवा दी। एक दिन देविल ने एक मुनि को लाकर इस धर्मशाला में ठहरा दिया। धर्मिल को जब मालूम हुआ तो उसने मुनि को हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दिया और वहाँ संन्यासी को लाकर ठहरा दिया। सच है, जो दुष्ट हैं, दुराचारी हैं, पापी हैं, उन्हें साधु-सन्त अच्छे नहीं लगते, जैसे उल्लू को सूर्य। धर्मिल ने मुनि को निकाल दिया, उनका अपमान किया, पर मुनि ने इसका कुछ बुरा न माना। वे जैसे शान्त थे वैसे ही रहे। धर्मशाला से निकल कर वे एक वृक्ष के नीचे आकर ठहर गए। रात इन्होंने वहीं पूरी की। डांस, मच्छर वगैरह का इन्हें बहुत कष्ट सहना पड़ा। इन्होंने सब सहा और बड़ी शान्ति से सहा। सच है, जिनका शरीर से रत्तीभर मोह नहीं उनके लिए तो कष्ट कोई चीज ही नहीं। सबेरे जब देविल मुनि के दर्शन करने को आया और उन्हें धर्मशाला में न देखकर एक वृक्ष के नीचे बैठा देखा तो उसे धर्मिल की इस दुष्टता पर बड़ा क्रोध आया। धर्मिल का सामना होने पर उसने उसे फटकारा। देविल की फटकार धर्मिल न सह सका और बात बहुत बढ़ गई यहाँ तक कि परस्पर में मारामारी हो गई, दोनों ही परस्पर में लड़कर मर मिटे। क्रूर भावों से मरकर ये दोनों क्रम से सूअर और व्याघ्र हुए। देविल का जीव सूअर विन्ध्य पर्वत की गुफा में रहता था। एक दिन कर्मयोग से गुप्त और त्रिगुप्ति नाम के दो मुनिराज अपने विहार से पृथ्वी को पवित्र करते इसी गुफा में आकर ठहरे। उन्हें देखकर इस सूअर को जातिस्मरण हो गया। इसने उपदेश करते हुए मुनिराज द्वारा धर्म का उपदेश सुन कुछ व्रत ग्रहण किए। व्रत ग्रहण कर यह बहुत सन्तुष्ट हुआ ॥१८-२९॥

तदा मानुष्यमाघ्राय गन्धं तत्रैव चागतः। स नापितचरो व्याघ्रो मुनिभक्षणदुष्टधीः ॥३०॥
 शूकरोपि गुहाद्वारे तयो रक्षमतिस्तराम्। स्थित्वा व्याघ्रेण तेनैव समं युद्धं चकार सः ॥३१॥
 दन्तैर्नखैः करोद्धातैः कृत्वा युद्धं परस्परं। तौ तत्र मरणं प्राप्तौ तिर्यञ्चौ चातिदारुणम् ॥३२॥
 शूकरो मुनिरक्षाभिः प्रायेण शुभयोगतः। कल्पे सौधर्मसंज्ञोभूद्देवो नानाद्धिको महान् ॥३३॥
 निजदेहप्रभाभारैर्निष्काशितमहातमाः। रूपलावण्यसौभाग्यसुरंजितजगन्मनाः ॥३४॥
 दिव्याम्बरधरो धीरस्तिरीटादिविभूषणः। स्रग्वी सुकान्तिसंयुक्तो विनिर्जितसुरद्रुमः ॥३५॥
 अणिमादिगुणोपेतः सावधिज्ञानलोचनः। पूर्वपुण्यप्रसादेन स देवो दिव्यसौख्यभाक् ॥३६॥
 देवाङ्गनागणैर्युक्तः सुरासुरैः सुसेवितः। महाविभवसम्पन्नो महाकल्याणभाजनम् ॥३७॥
 सर्वेन्द्रविलसन्मौलिकोटिचर्चितपद्भुवाम्। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां चरणार्चनकोविदः ॥३८॥
 कृत्रिमाकृत्रिमाणां च जिनेन्द्रवरसद्धानाम्। जिनेन्द्रप्रतिमानां च साक्षात्तीर्थेशिनां सदा ॥३९॥
 पूजां प्रीत्या प्रकुर्वाणो लसत्संपत्प्रदायिनीम्। सत्तीर्थेषु महायात्रां दुर्गतिच्छेदकारिणीम् ॥४०॥
 महामुनिषु सद्भक्तिं नित्यं साधर्मिकेषु च। सद्वात्सल्यं वितन्वानः स देवः सुखमन्वभूत् ॥४१॥
 इति श्रीजिननाथोक्तसारधर्मप्रसादतः। भव्या भवन्ति सर्वत्र सुखिनो नात्र संशयः ॥४२॥

इसी समय मनुष्यों की गन्ध पाकर धर्मिल का जीव व्याघ्र मुनियों को खाने के लिए झपटा हुआ आया। सूअर उसे दूर से देखकर गुफा के द्वार पर आकर डट गया। इसलिए कि वह भीतर बैठे हुए मुनियों की रक्षा कर सके। व्याघ्र ने गुफा के भीतर घुसने के लिए सूअर पर बड़ा जोर का आक्रमण किया। सूअर पहले से ही तैयार बैठा था। दोनों के भावों में बड़ा अन्तर था। एक के भाव थे मुनिरक्षा करने के और दूसरे के उनको खा जाने के। इसलिए देविल का जीव सूअर तो मुनिरक्षा रूप पवित्र भावों से मर कर सौधर्म स्वर्ग में अनेक ऋद्धियों को धारी देव हुआ। जिसके शरीर की चमकती हुई कान्ति गाढ़े से गाढ़े अन्धकार को नाश करने वाली है, जिसकी रूप-सुन्दरता लोगों के मन को देखने मात्र से मोह लेती है, जो स्वर्गीय दिव्य वस्त्रों और मुकुट, कुण्डल, हार आदि बहुमूल्य भूषणों को पहनता है, अपनी स्वभाव-सुन्दरता से जो कल्पवृक्षों को नीचा दिखाता है, जो अणिमादि ऋद्धि-सिद्धियों का धारक है, अवधिज्ञानी है, पुण्य के उदय से जिसे सब दिव्य सुख प्राप्त हैं, अनेक सुन्दर-सुन्दर देव-कन्याएँ और देवगण जिसकी सेवा में सदा उपस्थित रहते हैं, जो महा वैभवशाली हैं, महा सुखी हैं, स्वर्गों के देवों द्वारा जिनके चरण पूजे जाते हैं ऐसे जिन भगवान् की, जिन प्रतिमाओं की और कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिन मन्दिरों की जो सदा भक्ति और प्रेम से पूजा करता है, दुर्गति के दुःखों को नाश करने वाले तीर्थों की यात्रा करता है, महामुनियों की भक्ति करता है और धर्मात्माओं के साथ वात्सल्यभाव रखता है ऐसी उसकी सुखमय स्थिति है। जिस प्रकार वह सूअर धर्म के प्रभाव से उक्त प्रकार सुख का भोगने वाला हुआ उसी प्रकार जो और भव्यजन इस पवित्र धर्म का पालन करेंगे वे भी उसके प्रभाव से सब सुख-संपत्ति लाभ करेंगे। समझिए, संसार में जो-जो धन प्राप्त होता है, स्त्री, पुत्र, सुख, ऐश्वर्य आदि अच्छी-अच्छी आनन्द भोग की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनका कारण एक मात्र

यैर्लोके धनधान्यादि-पुत्रपौत्रादिसम्पदाः । प्राप्यन्ते भो महाभव्या तासां धर्मो हि कारणम् ॥४३॥
 पूजा श्रीमज्जिनेन्द्राणां पात्रदानं व्रतक्रिया । प्रौषधादिविधिः प्रोक्तः सद्धर्मोयं सतां श्रिये ॥४४॥
 स व्याघ्रस्तु महापापी मुनिभक्षणमानसः । मृत्वा तेनैव पापेन संप्राप्तो नरकं कुधीः ॥४५॥
 ज्ञात्वेति च महाभव्यैः पुण्यपापफलाफलम् । श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां धर्मो कार्या मतिः सदा ॥४६॥
 इति सदभयदाने पात्रभेदेन मान्ये परमसुखनिदाने ध्वस्तपापारिमाने ।
 जिनपतिकथितेस्मिन्सारसूत्रे पवित्रे भवति जगति सिद्धा सत्कथेयं श्रिये च ॥४७॥
 इति कथाकोशेऽभयदानफलप्राप्तशूकरस्याख्यानं समाप्तम् ।

११३. करकण्डुनृपस्याख्यानम्

श्रीमज्जिनं जगत्पूज्यं प्रणम्य प्रगदाम्यहम् । करकण्डुनरेन्द्रस्य सच्चरित्रं सुखावहम् ॥१॥
 यः पुरा श्रीजिनाधीशं व्रतेनैकेन मुग्धधीः । गोपालोपि समभ्यर्च्य प्राप्तवान्सुखमुत्तमम् ॥२॥
 तच्चरित्रं पुराणज्ञैर्यथोक्तं पूर्वसूरिभिः । तेषां पादप्रसादेन संक्षेपेण तथोच्यते ॥३॥
 अत्रैव भरतक्षेत्रे देशे कुन्तलसंज्ञके । पुरे तेरपुरे नीलमहानीलौ नरेश्वरौ ॥४॥
 श्रेष्ठी श्रीवसुमित्राख्यो जिनपादाब्जषट्पदः । श्रेष्ठिनी वसुमत्याख्या तस्याभूद्धर्मवत्सला ॥५॥

धर्म है। इसलिए सुख की चाह करने वाले भव्यजनों को जिन-पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, संयम आदि धर्म का निरन्तर पवित्र भावों से सेवन करना चाहिए। देविल तो पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग गया और धर्मिल ने मुनियों को खा जाना चाहा था इसलिए वह पाप के फल से मरकर नरक गया। इस प्रकार पुण्य और पाप का फल जानकर भव्यजनों को उचित है कि वे पुण्य के कारण पवित्र जैनधर्म में अपनी बुद्धि दृढ़ करें ॥३०-४६॥

इस प्रकार परम सुख-मोक्ष के कारण, पापों का नाश करने वाले और पात्र-भेद से विशेष आदर योग्य इस पवित्र अभयदान की कथा अन्य जैन शास्त्रों के अनुसार संक्षेप में यहाँ लिखी गई। यह सत्य कथा संसार में प्रसिद्ध होकर सबका हित करे ॥४७॥

११३. करकण्डु राजा की कथा

संसार द्वारा पूजे जाने वाले जिन भगवान् को नमस्कार कर करकण्डु राजा का सुखमय पवित्र चरित लिखा जाता है ॥१॥

जिसने पहले केवल एक कमल से जिन भगवान् की पूजा कर जो महान् फल प्राप्त किया, उसका चरित जैसा ग्रन्थों में पुराने ऋषियों ने लिखा है उसे देखकर या उनकी कृपा से उसका थोड़ा सार मैं लिखता हूँ ॥२-३॥

नील और महानील तेरपुर के राजा थे। तेरपुर कुन्तल देश की राजधानी थी। यहाँ वसुमित्र नाम का एक जिनभक्त सेठ रहता था। सेठानी वसुमती उसकी स्त्री थी। धर्म से उसे बड़ा प्रेम था। इन सेठ-सेठानी के यहाँ धनदत्त नाम का एक ग्वाला नौकर था। वह एक दिन गाय चराने को जंगल में गया